बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 88

जेटली की विदाई

वित्त मंत्री अरुण जेटली ने आखिरकार अपने स्वास्थ्य और मंत्रिमंडल में बने रहने से जुड़ी तमाम अटकलों पर विराम लगा दिया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को लिखे एक पत्र में जेटली ने कहा है कि वह स्वास्थ्य संबंधी गंभीर चुनौतियों के कारण फिलहाल अगली कैबिनेट का हिस्सा नहीं बनना चाहते। हालांकि उनके करीबी लोग पिछले कुछ दिनों से साहस का परिचय दे रहे थे लेकिन उनका यह कदम प्रतीक्षित था। वर्ष 2014 में वित्त मंत्रालय संभालने के बाद जेटली कई बार शल्य चिकित्सा से गुजरे और बीते 13 महीनों में वह दो बार अवकाश पर गए। वह वर्ष 2019-20 का अंतरिम बजट भी पेश नहीं कर सके। पिछले दिनों चुनाव नतीजे पेश किए जाने के बाद भारतीय जनता पार्टी ने जीत का जो जश्न मनाया, उसमें भी वह शामिल नहीं हुए थे।

उनके उत्तराधिकारी को लेकर गहन अटकलों का दौर पहले से ही जारी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक बार उन्हें कीमती हीरा कहा था। जाहिर तौर पर वह उनकी कमी महसूस करेंगे। जेटली ने कई भूमिकाओं का निर्वहन किया। वह संकट मोचक भी रहे और भाजपा के प्रमुख राजनीतिक रणनीतिकारों में से भी एक रहे। यह भूमिका तो वह अभी भी निभा सकते हैं। इनके अलावा उन्होंने मंत्रिमंडल का संभवत: सबसे अहम और संवेदनशील विभाग भी संभाला। इनमें से अधिकांश भूमिकाओं में वह सफल रहे।

जेटली पीछे मुड़कर देखें तो वह न केवल राहत की सांस ले सकते हैं बल्कि उन्हें गौरव भी हो सकता है। उन्होंने उस वक्त वित्त मंत्रालय का कार्यभार संभाला जब अधिकांश वृहद आर्थिक मानक मसलन, मुद्रास्फीति, राजकोषीय घाटा, रुपये-डॉलर की विनिमय दर और आर्थिक वृद्धि आदि निराशाजनक स्तर पर थे। जेटली इन सभी पर नियंत्रण पाने में कामयाब रहे और उन्होंने काफी हद तक राजकोषीय अनुशासन कायम किया। मुद्रास्फीति दो अंकों में थी, वह भी काफी कम हो गई।

अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में जेटली ने कुछ बड़े आर्थिक सुधारों को गति दी। इनमें से पहला था वस्तु एवं सेवा कर व्यवस्था जिसने एक जटिल और अक्षम अप्रत्यक्ष कर ढांचे को खत्म किया। जीएसटी के बारे में अहम बात यह है कि उन्होंने राजकोषीय संघवाद की भावना का अनुपालन किया और जीएसटी परिषद को सहमति से निर्णय लेने दिए। उन्होंने इसके लिए मतदान आदि का सहारा नहीं लेने दिया। व्यापक तौर पर देखें तो इसका श्रेय जेटली की उन क्षमताओं को जाता है जिनके तहत वह सार्वजनिक बहस में तार्किकता और सभ्यता बरकरार रखते आए। ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता एक अन्य बड़ा सुधार है जो कर्जदारों, प्रवर्तकों तथा ऋणदाताओं के व्यवहार में तब्दीली लाई है।

बहरहाल, सबकुछ हमेशा बेहतर ही नहीं रहा। जेटली के वित्त मंत्रालय से निकलने के बीच कई गहन आर्थिक चुनौतियां बरकरार हैं। निवेश और खपत के मोर्चे पर देश की वृद्धि को गतिशील बनाना, नई सरकार के लिए एक अहम चुनौती होगी। देश के सकल घरेलू उत्पाद में खपत की हिस्सेदारी 60 फीसदी से अधिक है। नए निवेश में कमी के कारण पिछले कुछ समय में इसमें काफी गिरावट आई है। तयशुदा निवेश भी बीते चार वर्ष से जीडीपी के 30 फीसदी के आसपास ठहरा हुआ है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की बात करें तो छह वर्ष में पहली बार उसमें गिरावट दर्ज की गई है। जेटली ने प्रधानमंत्री को लिखे अपने पत्र में संकेत दिया है कि वह पार्टी अथवा सरकार की सहायता के लिए अनौपचारिक तौर पर कोई भी काम करने को तैयार हैं। नए वित्त मंत्री अगर जेटली की बुद्धिमता का लाभ उठाएं तो बेहतर होगा।

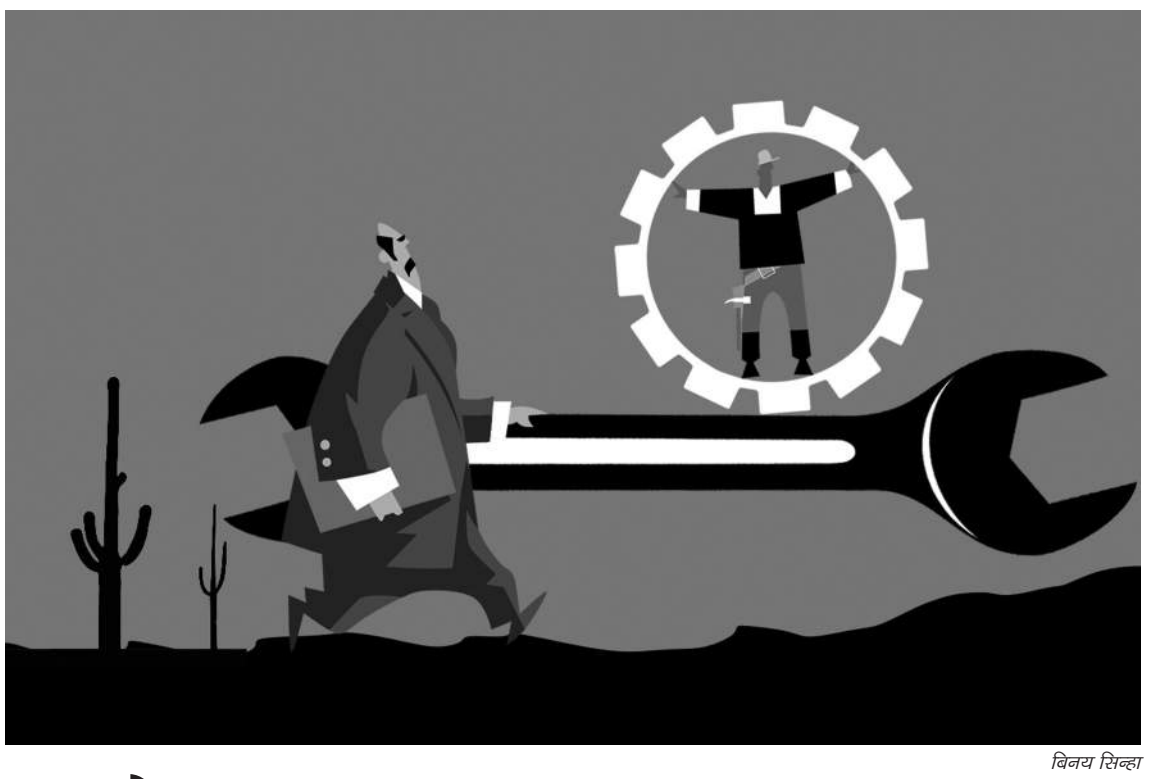

विनय सिन्हा

कौशल विकास से ही बनेगी युवाओं की बात

देश के युवा ऐसे रोजगार चाहते हैं जहां उन्हें आगे बढ़ने के अवसर मिल सकें। हमारी कौशल विकास योजनाओं का स्वरूप भी ऐसा होना चाहिए कि युवाओं की यह इच्छा पूरी हो सके। बता रहे हैं **राजीव कुमार**

हमारे देश में एक बड़ा विरोधाभास यह है कि यहां की अर्थव्यवस्था में श्रम का आधिक्य है लेकिन कौशल की काफी कमी है। जबकि इसी बीच हम कुछ कौशल और पेशेवर प्रतिभाओं का निर्यात भी करते हैं। सन 2018 में हमने ऐसा करके 790 करोड़ डॉलर की मुद्रा अर्जित की। ऐसे में कहा जा सकता है कि कुछ क्षेत्रों में कौशल की कमी काफी हद तक घरेलू अर्थव्यवस्था में कम वेतन भत्तों की बदौलत भी है। दूसरे क्षेत्रों की बात करें तो वहां आपूर्ति की कमी इसकी वजह हो सकती है।

विश्व स्तर पर गहन सरकारी हस्तक्षेप का वैश्विक अनुभव हमें बताता है कि मानव संसाधन विकास की सार्वजनिक प्रकृति के बीच आपूर्ति क्षेत्र की दिक्कत बाजार आधारित कौशल विकास व्यवस्था की जरूरत को अपरिहार्य बनाती है। इससे वेतन भत्तों की लागत में इजाफा होता है। यह देश के जनांकीय और कार्यबल के स्वरूप की तुलना में काफी अधिक हो जाता है। इन कारणों से ही भारत सरकार ने शिक्षा के स्तर पर गहन हस्तक्षेप किया है ताकि पर्याप्त कौशल उपलब्ध हो सके। इन प्रयासों के फलस्वरूप सन 2008 में निजी सार्वजनिक भागीदारी के आधार पर राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) की स्थापना की गई। सन 2015 में उसे कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (एमएसडीई) के अधीन कर दिया गया। अब एनएसडीसी की 49 फीसदी हिस्सेदारी एमएसडीई के पास है। बहुलांश हिस्सेदारी निजी साझेदारों के पास है। स्किल इंडिया योजना की घोषणा भी सन 2015 में की गई थी। अपनी स्थापना के बाद से ही एनएसडीसी ने देश भर में अपनी पहुंच बनाई। इस प्रक्रिया में उसने 443 प्रशिक्षण साझेदार तैयार किए, 8,503 प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए और 38 कौशल परिषद के साथ मिलकर 1,870 तरह के रोजगार चिह्नित किए। इसके अलावा करीब 99 लाख लोगों को प्रशिक्षित किया गया।

प्लेसमेंट का रिकॉर्ड बताता है कि इसके निजी क्षेत्र के प्रशिक्षण साझेदारों के 47 फीसदी प्रशिक्षुओं को रोजगार मिल गया। अन्य सरकारी योजनाओं के तहत प्लेसमेंट की दर केवल 15 से 18 फीसदी रही। इसके अलावा 19 मंत्रालय 44 अन्य योजनाएं संचालित करते हैं। कुछ योजनाएं एमएसडीई के सहयोग से चलती हैं तो अन्य की शुरुआत हाल ही में स्किल इंडिया तथा कृषि, स्वच्छता एवं पेयजल आदि मंत्रालयों के सहयोग से हुई। विभिन्न योजनाओं के अधीन प्रशिक्षित हुए लोगों के लिए रोजगार की तलाश करना आसान नहीं रहा है। या तो उपलब्ध रोजगार प्रशिक्षुओं की आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं या फिर उन्होंने जो कौशल अर्जित किया है वह औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि घरेलू उद्योगों पर नई तकनीक अपनाने का दबाव पहले से बहुत अधिक है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में तमाम तरह के कौशल की मांग का आकलन करना बहुत मुश्किल काम है। तकनीकी उन्नति वाली अर्थव्यवस्था में उभरते कौशल की मांग का अनुमान लगाना कतई आसान नहीं है। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि मौजूदा कौशल कार्यक्रम ऐसे नहीं हैं जो कौशल में निरंतर उन्नयन की पहचान कर सकें। ऐसे में तेजी से आगे बढ़ती दुनिया में वे कहीं पीछे छूट जाते हैं।

इस बात का भी जोखिम है कि एनएसडीसी का व्यापक प्रशिक्षण नेटवर्क कहीं नई तालीम की गति को न प्राप्त हो। नई तालीम योजना की शुरुआत सन 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में की गई थी लेकिन जाकिर हुसैन और केडी श्रीमाली जैसे बड़े नाम जुड़े होने के बावजूद यह अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इस योजना के तहत प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों के कौशल में भविष्य के बदलावों के मुताबिक सुधार की गुंजाइश नहीं थी।

ऐसे में विकल्पों पर विचार करने की आवश्यकता है। प्रशिक्षण के साथ निरंतर शिक्षा देने पर विचार करना होगा ताकि उम्मीदवार अपने कौशल और शिक्षा स्तर में लगातार सुधार करता रह सके। सन 1961 में नैशनल अप्रेंटिसशिप लॉ बनाया गया था ताकि कुल कर्मचारियों में कम से कम 2.5 फीसदी प्रशिक्षु हों और इसे आगे चलकर 10 प्रतिशत तक पहुंचाया जा सके। मौजूदा दौर में कुल श्रमशक्ति में उनकी हिस्सेदारी बमुश्किल 0.3 फीसदी है। चीन में यह 1.3 फीसदी और जर्मनी में 3.7 फीसदी है। फिलहाल सरकार की ओर से दिया जाने वाला प्रशिक्षु भत्ता मात्र 1,500 रुपये है। इसे बढ़ाकर दोगुना और तीन गुना करने और श्रम निरीक्षकों पर प्रभावी नियंत्रण करने से इस योजना को बेहतर बनाया जा सकता है।

परंतु इससे बेहतर उपाय भी उपलब्ध है। देश का पहला सुपर कंप्यूटर परम विकसित करने वाला विभाग, सीडैक के पूर्व उप प्रमुख डॉ. विवेक सावंत ने चुनौती को सवीकार करते हुए महाराष्ट्र नॉलेज कॉर्पोरेशन लिमिटेड (एमकेसीएल) में बदलाव लाने का निर्णय लिया। इसकी स्थापना पुणे में 2001 में पीपीपी आधार पर की गई थी। सन 2012 से एमकेसीएल अप्रेंटिशिप और शिक्षा को साथ जोड़कर जारी रखने का सफल प्रयोग किया। जुलाई 2019 तक कुल 204 छात्र एमकेसीएल की अंशकालिक पेशकश के तहत तीन वर्ष के पाठ्यक्रम के तहत यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय से बीबीए की डिग्री हासिल कर लेंगे। ये तमाम छात्र समाज के निचले तबके से आते हैं और सप्ताह में पांच दिन पुणे की कंपनियों में प्रशिक्षु के रूप में काम करते हैं। उन्हें नौकरी की तैयारी के साथ डिजिटल कौशल, अंग्रेजी और अन्य चीजों का प्रशिक्षण दिया जाता है। उनको 8,000 रुपये का प्रशिक्षण भत्ता दिया जाता है। यह राशि उन गरीब युवाओं के आकर्षण का केंद्र है जो इसकी मदद से अपने मातापिता की सहायता करते हैं। यह राशि कंपनियों द्वारा दी जाती है। सभी प्रशिक्षुओं को लैपटॉप दिया गया है। उन्हें अनुभव प्रमाणपत्र भी दिया जाता है। इसके अतिरिक्त सप्ताहांत पर उन्हें एमकेसीएल के पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक जानकारियां भी दी जाती हैं। इन तमाम युवाओं को फेडरल एक्सप्रेस, टाटा, एमेजॉन, एनईसी आदि कंपनियों में औसतन 12,000 रुपये मासिक का रोजगार मिला है। इनकी पदोन्नति की संभावना भी काफी कम है। फिलहाल यहां 400 विद्यार्थी नामांकित हैं। सबक यह है कि भारत का युवा अब किसी भी रोजगार से संतुष्ट नहीं है। उनको अच्छा रोजगार चाहिए जहां आगे की शिक्षा और बेहतर भविष्य की गुंजाइश हो। ऐसे में तमाम कौशल योजनाओं को इसी मुताबिक तैयार करना होगा।

एमकेसीएल की यह प्रायोगिक परियोजना राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किए जाने के लिए तैयार है। एमकेसीएल इसका नेतृत्व करने को तैयार है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को अब आगे बढ़कर एमकेसीएल को मजबूत बनाना चाहिए और राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा कार्यक्रम पेश किया जाना चाहिए। स्किल इंडिया भी इस कार्यक्रम को पूरे देश में सफल बनाने में मददगार हो सकता है। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस वित्त वर्ष में हमें ऐसा देखने को मिलेगा।

(लेखक नीति आयोग के उपाध्यक्ष हैं।)

इक्कीसवीं सदी में भारत की जाति व्यवस्था ?

नीति नियम

मिहिर शर्मा

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने आम चुनाव में विजय के पश्चात जो संबोधन दिया उसमें एक पंक्ति विशिष्ट थी। 21वीं सदी के भारत को लेकर अपना नजरिया पेश करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि भविष्य में दो ही जातियां रहने वाली हैं: एक तो वे जो गरीब हैं और दूसरी वो जो गरीबों के उद्धार के लिए काम करती हैं। उनके इस वक्तव्य को कई तरह से देखा जा सकता है। पहली बात, यह वक्तव्य शायद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनिवार्य आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। ध्यान रहे यही वह संगठन है जिसने मोदी को वैचारिक रूप से तैयार किया है। इसकी दूसरी व्याख्या एक तरह से मार्क्सवादी है जो जातीय गौरव और जातीय अंतर को खत्म करने की बात कहती है। अगर वे बरकरार भी रहें तो भी उनको वर्ग से प्रतिस्थापित किया जा सकता है। अपवाद केवल यह है कि उद्धार की जगह वर्ग संघर्ष की धारणा ले लेगी। देश में गरीबी को लेकर बहस के जो और रूप हैं, वे कुछ मायनों में इसके विरोधाभासी हैं। मोदी यहां सशक्तीकरण के बजाय परोपकार की बात कर रहे हैं। वह ऐसा नहीं कहते कि इन दो जातियों में एक अमीर है और दूसरी वह जो जल्दी ही अमीर होगी।

मोदी और उनके नजरिये को देश की तमाम जातियों और वर्गों में बड़ी जीत मिली है। केवल धार्मिक अल्पसंख्यक ही अपवाद हैं। ऐसे में मोदी जिस सामाजिक बदलाव का नेतृत्व कर रहे हैं, उसके और जातीय पदसोपान के आपसी रिश्ते पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है। मोदी ने अपने ओबीसी होने का मुद्दा भी बनाया और उन्हें इसका फायदा भी मिला। पहले उन्हें इसका लाभ उत्तर प्रदेश की जातीय राजनीति में मिला जहां समाजवादी पार्टी को गैर यादव ओबीसी का साथ नहीं मिला और दूसरा उन्होंने खुद को ब्राह्मणवादी नेतृत्व तथा संघ की ऐसी परंपराओं से दूर रखा। अतीत में उन्होंने कुछ चौंकाने वाली बातें कहीं हैं। खासतौर पर हाथ से मैला ढोने और दलितों को खासकर वाल्मीकि समुदाय को लेकर। उन्होंने कहा था कि हाथ से मैला ढोना उन पर थोपी गई आजीविका नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक गतिविधि है जो उन्होंने पीढ़ियों से चुन रखी है। उनका यह विचार संघ की सोच के करीब है। हालांकि अब वह इस कुप्रथा के खात्मे की बात कहने लगे हैं।

इन सारी बातों के बीच मोदी ने भारत जैसे जातीय विभाजन में घिरे हुए देश को लेकर जो दावा किया है वह किसी आकांक्षा से अधिक एक तरह का अपमार्जन नजर आता है। दलित लेखक और बौद्धिक चंद्रभान प्रसाद ने ट्विटर पर मोदी को लेकर उपजे इस आंदोलननुमा जनमत को सवर्ण उभार का नाम दिया है। उनका कहना है कि अगर संविधान को अंगीकृत करने की तारीख यानी 26 जनवरी क्रांति थी तो यह एक प्रतिक्रांति है। प्रसाद का मानना है देश के तमाम आर्थिक तबकों से आने वाले दलित पीड़ित की तरह बात कर सकते हैं तो देश के उच्च वर्ण के लोग भी आज उसी तरह बात कर सकते हैं। सवर्णों को लगता है कि अतीत के भारत को पुनर्जीवित किया जा सकता है। मेरी दृष्टि में प्रसाद का सोचना सही है। वह कहते हैं कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में नई पीढ़ी के सवर्णों को उनके घर के बुजुर्ग अतीत के गौरव की याद दिलाते हैं। आंबेडकर को संविधान के लिए, नेहरू को जमींदारी प्रथा के अंत के लिए खलनायक के रूप में पेश किया जाता है। ऐसे में उच्च वर्ग के युवाओं में एक नए तरह की चेतना का उभार हो रहा है जो अपना पुराना गौरव वापस चाहते हैं।

प्रसाद कहते हैं कि दलित, जनजातीय और मुस्लिम पहचान वाले दलों का जो सफाया हुआ है वह इस प्रति क्रांतिकारी एकजुटता की बदौलत हुआ है। इसके लिए धर्म और राष्ट्रवाद को हथियार बनाया गया। इससे न केवल उच्च वर्ग के हिंदू मतों को भाजपा के पक्ष में लामबंद किया गया बल्कि अन्य गठबंधनों का हिस्सा रहे अत्यधिक पिछड़ा वर्ग, गरीब ओबीसी आदि को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया जाए। प्रसाद उल्लेख तो नहीं करते लेकिन युवा गैर जाटव दलित भी भाजपा की ओर खिंच गए। यह एकीकृत हिंदू वोट बैंक अतीत के गौरव की वापसी की कामना करने वाले उच्च वर्ग और इन नए छिटके हुए समुदायों से बना था। ये समुदाय हिंदुत्व और संस्कृतिकरण के माध्यम से सामाजिक परिदृश्य में अपनी नई जगह बनाना चाहते थे। इस नए गठजोड़ को पराजित कर पाना संभव नहीं था। यह मोदी और शाह की असली राजनीतिक उपलब्धि है। उन्होंने भारतीय राजनीति में अब तक का सबसे बड़ा और भरोसेमंद वोट बैंक तैयार किया है। ऐसा करने के लिए उन्होंने एक पुराना तरीका अपनाया है: सामाजिक विभाजन को नकारना और ऐसा दिखाना मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं हो। बहरहाल सच तो यही है कि जाति से मुक्त उत्तर प्रदेश मुख्यमंत्री आदित्यनाथ के अधीन प्रमुख रूप से ठाकुरों द्वारा ही चलाया जा रहा है। पुराने बुर्जुआ वर्ग द्वारा चलाई जा रही प्रति क्रांति एक बड़ी ताकत है। अमेरिका में डॉनल्ड ट्रंप के निर्वाचन में ओबामा के कार्यकाल के बाद श्वेत समुदाय में उभरी नाराजगी की अहम भूमिका थी। मोदी ने वही काम बहुत व्यापक पैमाने पर किया है। इतना ही नहीं उन्होंने इसे बेहद सक्षम तरीके से अंजाम दिया है। जाहिर सी बात है मुस्लिम इसमें शामिल नहीं हैं। सबका साथ, सबका विकास का जो नारा दिया गया था उसका तात्पर्य यह था कि इससे पहले के सत्ता प्रतिष्ठान कुछ समूहों को प्राथमिकता देते रहे और इस प्रकार उच्च वर्ण के प्रतिभाशाली हिंदू वंचित रह गए। ऐसी ही लेकिन कम नजर आने वाली प्रक्रिया दलितों और आदिवासियों के बीच भी घटित हो सकती है। पुराने जाति आधारित दल मसलन बहुजन समाज पार्टी और लोहियावादी समाजवादी इसका मुकाबला करने को तैयार नहीं दिखते। काफी हद तक ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्होंने विचारधारा और चेतना बढ़ाने वाली राजनीति की जगह संरक्षणवादी राजनीति को बढ़ावा दिया। मैं इन दलों या इनके उत्तराधिकारियों को कोई सलाह देने की स्थिति में नहीं हूं। अत: यह सच है और हमेशा सच रहा है कि एक विचारधारात्मक लड़ाई चल रही है जिसमें वे अपना काफी कुछ गंवा रहे हैं।

कानाफूसी

रमन की सलाह

छत्तीसगढ़ के पूर्व मुख्यमंत्री रमन सिंह ने मौजूदा मुख्यमंत्री भूपेश बघेल को सलाह दी है कि वह देश के इतिहास के बारे में अपनी जानकारी बढ़ाएं और तब तक ऐतिहासिक विषयों पर कुछ न ही बोलें तो बेहतर। सिंह ने यह सलाह तब दी जब बघेल ने कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने हमेशा जवाहरलाल नेहरू को देश के विभाजन के साथ जोड़ने का प्रयास किया लेकिन इसका असली दोष हिंदू महासभा के नेता विनायक दामोदर सावरकर के माथे पर आता है। बघेल ने कहा था कि दो राष्ट्र का सिद्धांत सबसे पहले मोहम्मद अली जिन्ना ने नहीं बल्कि विनायक दामोदर सावरकर ने आगे बढ़ाया था। देश में हाल में संपन्न लोकसभा चुनावों में भाजपा ने छत्तीसगढ़ की 11 में से 9 सीटों पर जीत हासिल की। सिंह ने चुटकी लेते हुए कहा कि चुनाव में भारी पराजय के बाद लोगों का यूं हताश हो जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।

राज्य सभा पर रस्साकशी

तमिलनाडु में राज्य सभा सीटों को लेकर लड़ाई छिड़ गई है। अगले महीने राज्य से छह राज्य सभा सदस्य चुने जाने हैं। हालिया उपचुनावों में सत्ताधारी अन्नाद्रमुक को नौ सीटों पर जीत हासिल हुई। इसका यह अर्थ हुआ कि पार्टी अब तीन सदस्यों को राज्यसभा में भेज सकती है। पार्टी ने एक सीट अपनी साझेदार पीएमके को देने का वादा किया है जबकि एक सीट भाजपा को दी जा सकती है। तीसरी सीट के प्रबल दावेदार हैं वी मैत्रेयन जिनका कार्यकाल अगले महीने समाप्त हो रहा है। इसके अलावा 16वीं लोकसभा के उपाध्यक्ष एम तंबीदुरई, कृष्णागिरि के विधायक के पी मुनुस्वामी और जयकुमार जयवर्धन भी दावेदार हैं। द्रमुक की तीन सीटों में से एक साझेदार एमडीएमके और एक कांग्रेस के खाते में जाएगी। पार्टी के श्रम संगठन के प्रमुख षणमुगम और पूर्व मंत्री केएस राधाकृष्णन तथा सुब्बुलक्ष्मी जगदीशन भी दावेदारी में हैं।

एम तंबीदुरई

आपका पक्ष

आपराधिक पृष्ठभूमि के कई सांसद

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) ने 17वीं लोकसभा के परिणाम आने के बाद एक रिपोर्ट जारी की है। रिपोर्ट के अनुसार चुनाव जीतकर आए 542 सांसदों में कुल 233 सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं जबकि 2014 चुनाव में निर्वाचित ऐसे सांसदों की संख्या 185 थी। केरल के एक लोकसभा क्षेत्र से आए सांसद के खिलाफ 200 से अधिक आपराधिक मामले दर्ज हैं। उच्चतम न्यायालय ने एक आदेश जारी किया था और कहा था कि सभी प्रत्याशी चुनावी हलफनामे में अपने आपराधिक मुकदमों की जानकारी दें। इसे निर्वाचन आयोग मतदाताओं तक साझा करेगा ताकि मतदाताओं को पता चले कि जनप्रतिनधि की छवि कैसी है। यह कवायद देश की राजनीति से आपराधिक पृष्ठभूमि के नेताओं को दूर रखने के लिए की गई थी। विडंबना यह भी है कि सरकारी नौकरी में एक चतुर्थ श्रेणी के पद के लिए आपराधिक मामले होने पर उम्मीदवारी निरस्त कर दी जाती है। वहीं देश की जिम्मेदारी उठाने वाले नेताओं के लिए नियम लागू नहीं होते हैं। देश का संविधान ईमानदार, निष्पक्ष, कर्तव्यनिष्ठ नेताओं को संसद पहुंचाने की मतदाताओं को देता है लेकिन हम अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन ठीक से नहीं करते हैं। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए विशेष कानून बनना चाहिए।

अमित पांडेय, बिलासपुर

एडीआर की रिपोर्ट के अनुसार चुनकर आए 233 सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले हैं

बेसहारा विक्षिप्तजनों की सुधि लें

बस स्टैंड, बाजार, रेलवे स्टेशन आदि जगहों पर अक्सर विक्षिप्तजन दिखाई देते हैं। ऐसे लोगों में स्वयं घर छोड़ कर निकलने वाले के साथ घर से निकाले जाने वाले लोग भी शामिल होते हैं। विशेष रूप के महिला विक्षिप्तों के लिए स्थिति और भी भयावह हो जाती है। ऐसी विक्षिप्त महिलाओं के साथ यौन हिंसा का शिकार होने तथा उनके गर्भवती हो जाने की खबरें आती हैं। ऐसी एक गर्भवती महिला के गर्भपात करने की अनुमति मांगे जाने का मामला हाल ही में अदालत पहुंचा था। ऐसे विक्षिप्तजनों के प्रति प्राथमिक दायित्व उस क्षेत्र के थाने का होता है जो उन्हें अदालत में पेश करे तथा अदालत के आदेश के बाद उन्हें पुनर्वास केंद्र में भेजा जा सके। किसी तरह अदालत पहुंचे ऐसे लोगों को पुनर्वास केंद्र तक पहुंचाने में काफी व्यवहारिक परेशानी गिनाई जाती हैं। इस संबंध में बने नियमों के पालन में जो भी परेशानी आती है उसे दूर करने की जरूरत है। सामाजिक दायित्वों के निर्वहन को केवल छायाचित्र लेने, प्रेस विज्ञप्ति, सोशल मीडिया पोस्ट तक सीमित रखना कतई सही नहीं है। यह भी उचित नहीं कि हम ऐसे विक्षिप्तजनों को मात्र भोजन, कपड़ा देकर उन्हें उनके हाल पर छोड़ कर अपनी शेष जिम्मेदारी से मुंह मोड़ लें। विक्षिप्तजनों के साधन संपन्न परिजनों को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। नए उच्च स्तरीय चिकित्सालयों एवं पुनर्वास केंद्रों की स्थापना के साथ मौजूद केंद्रों की व्यवस्था में सुधार लाने की जरूरत है। इसके सुचारु रूप से संचालन के लिए प्रशिक्षित चिकित्सकों तथा कर्मियों की तैनाती करनी होगी और रिक्त पदों को भरना होगा। विक्षिप्तजनों को भी संविधान द्वारा उतने ही अधिकार प्राप्त हैं जितने किसी भी भारतीय नागरिक को प्रदत्त हैं।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।